

कठिनाइयों से डरिए नहीं, लड़िए



— पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

कठिनाइयों से डरिए नहीं, लड़िए

लेखक

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८९, ०९९२७०८६२८७

फैक्स : २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१४

मूल्य : ६.०० रुपये

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि

मथुरा (उ. प्र.)

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

पुनरावृत्ति सन् २०१४

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

कठिनाइयों से डरिए नहीं, लड़िए

कठिनाइयाँ क्या हैं ?

सृष्टि-संचालन के सार्वभौम नियमों के अनुसार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन होते रहना एक स्वाभाविक बात है। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन होता है। वर्षा के बाद के शरद और उसके पश्चात ग्रीष्मऋतु का आना भी निश्चय प्रायः ही होता है। सूर्य, चंद्र एवं अन्य ग्रह भी एक नियमबद्ध गति में चलते हैं। इसी तरह मानव-जीवन भी इस सार्वभौम नियमों के अंतर्गत सदैव एक-सा नहीं रहता। मनुष्य की इच्छा हो या न हो परंतु जीवन में भी परिवर्तनशील परिस्थितियाँ आती ही रहती हैं। आज उतार है तो कल चढ़ाव। चढ़े हुए गिरते हैं और गिरे हुए उठते हैं। आज उँगली के इशारे पर चलने वाले अनेकों अनुयायी हैं तो कल सुख-दुःख की पूछने वाला एक भी नहीं रहता। रंक कहाने वाला एक दिन धनपति बन जाता है तो धनवान निर्धन बन जाता है। जीवन में इस तरह की परिवर्तनशील परिस्थितियाँ आते-जाते रहना नियति चक्र का सहज स्वाभाविक नियम है। इनसे बचा नहीं जा सकता, इन्हें टाला नहीं जा सकता।

एकांगी विचार-प्रेरित मनुष्य इस नियति के विधान को नहीं समझ पाता। वह अपनी इच्छा-कामना के अनुकूल परिस्थितियों में ही सुख का अनुभव करता है तो विपरीत परिस्थितियों में दुखी हो जाता है। अधिकांश व्यक्ति सुख, सुविधा, संपन्नता, लाभ, उन्नति आदि में प्रसन्न और सुखी रहते हैं, किंतु दुःख, कठिनाई, हानि आदि में

दुखी और उद्विग्न हो जाते हैं। किंतु यह मनुष्य के एकांगी दृष्टिकोण का परिणाम है। और इसी के कारण कठिनाई, मुसीबत, कष्ट आदि शब्दों की रचना हुई। वस्तुतः परिवर्तन मानव-जीवन में उतना ही महत्त्वपूर्ण, सहज और स्वाभाविक है जितना रात और दिन का होना, ऋतुओं का बदलना, आकाश में ग्रह-नक्षत्रों का विभिन्न स्थितियों में गतिशील रहना। किंतु केवल सुख, लाभ, अनुकूल परिस्थितियों की ही चाह के एकांगी दृष्टिकोण के फलस्वरूप मनुष्य दुःख, कठिनाई और विपरीतताओं में रोता है। दूसरों को अथवा ईश्वर को अपनी विपरीतताओं के लिए कोसता है। शिकायत करता है। इनसे बचने के लिए कोसता है। वह सदा ही इनसे बचने के लिए असफल प्रयत्न करता है। किंतु इससे तो उसकी समस्याएँ बढ़ती ही जाती हैं, घटती नहीं। वस्तुतः कठिनाइयाँ जीवन का एक आवश्यक नियम है, जिसे स्वीकार करने में ही लाभ है।

कठिनाइयाँ जीवन की एक सहज स्वाभाविक स्थिति हैं, जिन्हें स्वीकार करके मनुष्य अपने लिए उपयोगी बना सकता है और कठिनाइयों को जीवन का विरोधी भाव मानकर उनमें दुखी और परेशान होकर मनुष्य अपनी ही हानि भी कर लेता है। कठिनाइयों में रोना, हार मान लेना, निराशा और अवसाद से ग्रस्त होना अपने विश्वास के मार्ग को छोड़ बैठना ही है। वस्तुतः कठिनाइयाँ इतनी भयंकर और कष्टदायक नहीं हैं जितना बहुत से लोग समझते हैं। जिन कठिनाइयों में कई व्यक्ति रोते हैं, हार बैठते हैं, मानसिक क्लेश अनुभव करते हैं; उन्हीं कठिनाइयों में दूसरे व्यक्ति नवीन प्रेरणा, नव उत्साह पाकर सफलता का वरण करते हैं। इस तरह कठिनाइयाँ अपने आप में कुछ नहीं हैं वरन मन की स्थिति से ही इनका स्वरूप बनता है। मन और कठिनाइयाँ सापेक्ष हैं। सबल मन वाला व्यक्ति बड़ी कठिनाई को भी स्वीकार करके आगे

बढ़ता है तो निर्बल मन वाला सामान्य सी कठिनाई में भी निश्चेष्ट हो जाता है। निर्बल मन तो अपनी कल्पनाजन्य कठिनाइयों में ही अशांत हो जाता है।

नियति के समय अजेय एवं अपरिवर्तनीय हैं। मानव-जीवन में होने वाले परिवर्तन भी इसी के अंतर्गत होने से ध्रुव सत्य हैं। जीवन में आने वाली कठिनाइयों की जड़ में भी यही है। इस तथ्य को हृदयंगम कर कठिनाइयों में भी संतुष्ट, संतुलित रहने वालों की जीवन यात्रा सहज गति में चलती रहती है। अनेक विपरीतताएँ भी उनका मार्ग नहीं रोक पातीं। छोटी-बड़ी कठिनाइयाँ उनके लिए इस तरह महत्त्व रखती हैं, जैसे रात और दिन, सरदी और गरमी।

परीक्षा की कसौटी पर प्रतिष्ठित हुए बिना कोई भी वस्तु उत्कृष्टता प्राप्त नहीं कर सकती, न उसका कोई मूल्य ही होता है। सोना भीषण अग्नि में तप कर ही शुद्ध और उपयोगी होता है। कड़ी धूप में तपने पर ही खेतों में खड़ी फसल पकती है। आग की भयानक गोद में पिघल कर ही लोहा साँचे में ढलने के उपयुक्त बनता है। जन-जन द्वारा पूजी जाने वाली मूर्ति पर पैनी-छैनी की असंख्य चोटें पड़ती हैं। परीक्षा की अग्नि में तप कर ही वस्तु शक्तिशाली, सौंदर्ययुक्त और उपयोगी बनती है। मनुष्य भी कठिनाइयों में तप कर उत्कृष्ट, सौंदर्य-युक्त, प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण बनता है। जीवन को अधिक उत्कृष्ट और महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए मनुष्य को उतनी ही अधिक कठिनाइयों और परेशानियों में से गुजरना पड़ेगा। वस्तुतः कठिनाइयाँ, दुःख, परेशानियाँ जीवन की कसौटी हैं, जिनमें मनुष्य के व्यक्तित्व का रूप निखरता है।

कठिनाइयाँ मनुष्य के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन्हें खुले हृदय से स्वीकार करके मानसिक विकास प्राप्त किया जा सकता

है। कठिनाइयों में खुलकर खेलने से इच्छाशक्ति प्रबल होती है। और बड़े-बड़े काम करने की क्षमता प्राप्त होती है। कठिनाइयों में मनुष्य की आंतरिक शक्तियाँ एकत्रित और संगठित होकर काम करती हैं। जीवन की कोई भी साधना कठिनाइयों में होकर निकलने पर ही पूर्ण होती है। कठिनाइयों में ही जीवन-दर्शन की परीक्षा होती है।

कठिनाइयाँ दुधारी तलवार हैं। जो व्यक्ति इनसे घबराकर गिर पड़ा, वह हार बैठा। वह अपने जीवन की सभी संभावनाओं को नष्ट कर देता है। इसके विपरीत जिसने कठिनाइयों को साध कर उनसे समझौता, समन्वय कर लिया, वह व्यक्ति कठिनाइयों को ही अपनी सफलता, उत्कृष्टता का साधन बना लेता है। कठिनाइयाँ एक ओर जीवन में कसौटी बनकर सुधार, नव-निर्माण, उत्थान की प्रेरणा देने में, उत्साह और मनोबल को ऊँचा उठाने में सहायक होती है, तो दूसरी ओर मनुष्य तो अकर्मण्य, निरुत्साह बना देती हैं। जीवन की आशा-उमंगों को धराशायी कर देती हैं। दोनों ही स्थितियों का उत्तरदायी मनुष्य स्वयं होता है। इसमें कठिनाइयों का कोई दोष या गुण नहीं है। जब मनुष्य कठिनाइयों की यथार्थता को नहीं समझता, उन्हें जीवन का स्वाभाविक अंग मानकर सहर्ष स्वीकार नहीं करता, तो ये ही कठिनाइयाँ अपार दुःख, अशांति, क्लेश का कारण बन जाती हैं भय और घबराहट पैदा हो जाते हैं। इससे मनुष्य का मानसिक संतुलन संगठन बिखर जाता है और अंतर्द्वंद्व पैदा हो जाते हैं। जब किसी राष्ट्र की आंतरिक शक्तियाँ विघटित होकर उनमें अंतर्द्वंद्व गृहयुद्ध पैदा हो जाता है तो उसका पतन होना स्वाभाविक ही है। उस पर बाह्य आक्रमण भी होने लगते हैं। इसी तरह अंतर्द्वंद्व से मानसिक शक्तियाँ नष्ट होने लगती हैं। फिर सामान्य सी कठिनाइयाँ भी मनुष्य की आशा, उमंग और धैर्य को घायल कर उसे निराशा, हीनता, अवसाद की ओर ढकेलती हैं। मनुष्य की बड़ी-बड़ी

आशाएँ, उमंगें, अभिलाषाएँ इस स्थिति में कठिनाइयों की चट्टान से टकराकर टूट-फूट जाती हैं, छिन्न-भिन्न हो जाती हैं।

इस तरह मनुष्य चाहे तो कठिनाइयों को वरदान बना सकता है और अभिशाप भी। आवश्यकता इस बात की है कि वह बार-बार प्रयत्न करके कठिनाइयों की कसौटी में सफल होने के प्रयास न छोड़े, अपनी साधना जारी रखें।

जीवन में आने वाली कठिनाइयों का समाधान मनुष्य कैसे करता है, इसका प्रभाव उनके साथ-साथ समाज और वातावरण पर भी काफी पड़ता है। जो मनुष्य कठिनाइयों का खुले दिल से स्वागत करता है, उनके साथ खेलता है, वह स्वयं तो उससे मिलने वाले लाभ प्राप्त करता ही है किंतु दूसरों के लिए भी प्रेरणा और आदर्श बन जाता है। एक कायर सैनिक को रण से भागता देखकर कई सैनिक भाग निकलते हैं। इसके विपरीत एक योद्धा जो अपने कर्त्तव्य को सामने रखकर कठिनाइयों में भी लड़ता है, उसे देखकर अन्य सैनिक भी प्रेरणा और उत्साह प्राप्त कर लड़ते रहते हैं। उनकी वीरता के भाव जाग्रत होते हैं।

जीवन में कठिनाइयाँ भी आवश्यक हैं

किसी भी महापुरुष का जीवन उठाकर देख लीजिए वह कठिनाइयों का एक जीता-जागता इतिहास मिलेगा। किसी उद्देश्य के लिए जीवन भर कठिनाइयों से जूझते रहना ही महापुरुष होना है। कठिनाइयों से गुजरे बिना कोई भी अपने लक्ष्य को नहीं पा सकता। विद्वानों का कहना है कि जिस उद्देश्य का मार्ग कठिनाइयों के बीच से नहीं जाता उसकी उच्चता में संदेह करना चाहिए।

ऐसा नहीं कि संसार के सारे महापुरुष असुविधापूर्ण परिस्थिति में ही जन्मे और पले हों। ऐसे अनेकों महापुरुष हुए हैं जिनका जन्म

बहुत ही संपन्न स्थिति में हुआ और वे जीवनभर संपन्नतापूर्ण परिस्थिति में ही रहे। यदि वे चाहते तो कठिनाइयों से बचकर भी बहुत से कार्य कर सकते थे किंतु उन्होंने वैसा नहीं किया। जो असुविधापूर्ण परिस्थिति में रहे उन्हें तो कठिनाइयों का सामना करना ही पड़ा, साथ ही जिन्हें किसी प्रकार की असुविधा नहीं थी उन्होंने भी कठिन कामों को हाथ में लेकर कठिनाइयों को इच्छापूर्वक आमंत्रित किया।

वास्तव में बात यह है कि कठिनाइयों के बीच से गुजरे बिना मनुष्य का व्यक्तित्व अपने पूर्ण चमत्कार में नहीं आता और न सुविधापूर्वक पाया हुआ सामान्य व्यक्तित्व किसी को पूर्ण संतोष देता है। कठिनाइयाँ एक ऐसी खराद की तरह हैं जो मनुष्य के व्यक्तित्व को तराश कर चमका दिया करती हैं। कठिनाइयों से लड़ने और उन पर विजय प्राप्त करने से मनुष्य में जिस आत्मबल का विकास होता है, वह एक अमूल्य संपत्ति होती है जिसको पाकर मनुष्य को अपार संतोष होता है। कठिनाइयों से संघर्ष पाकर जीवन में एक ऐसी तेजी उत्पन्न हो जाती है जो पथ के समस्त झाड़-झंखाड़ों को काटकर दूर कर देती है। एक चट्टान से टकराकर बढ़ी हुई नदी की धारा मार्ग के दूसरे अवरोध को सहज ही पार कर जाती है।

अपने व्यक्तित्व को पूर्णता की चरमावधि पर पहुँचाने के लिए ही भारतीय ऋषि-मुनियों ने तपस्या का कष्टसाध्य जीवन अपनाया। घर की सुख-सुविधाओं को छोड़कर अरण्य-आश्रमों का कठिन जीवन स्वीकार किया। हर आर्य गृहस्थ का धार्मिक कर्तव्य रहा है कि वह जीवन का अंतिम चरण सुख-सुविधाओं को त्याग कर कठिन परिस्थितियों में व्यतीत करने के लिए वानप्रस्थ तथा संन्यास ग्रहण किया करते थे। भारतीय आश्रम धर्म के निर्माण में एक उद्देश्य यह भी रहा है कि घर गृहस्थी में सुख-सुविधाओं के बीच रहते-रहते मनुष्य के व्यक्तित्व में

जो निस्तेजता और ढीलापन आ जाता है, वह संन्यस्त जीवन की कठोरता से दूर हो जाए और व्यक्ति अपने परलोक साधना के योग्य हो सके। कठिनाइयाँ मनुष्य को चमकाने और उसे तेजवान बनाने के लिए आती हैं। कठिनाइयों का जीवन में वही महत्त्व है जो उद्योग में श्रम का और भोजन में रस का।

जीवन को अधिकाधिक कठोर और कर्मठ बनाने में कठिनाइयों की जिस प्रकार आवश्यकता है उसी प्रकार चरित्र-निर्माण के लिए भी कठिनाइयों की उपयोगिता है। मनुष्य का सहज स्वभाव है कि उसे जितनी ही अधिक छूट मिलती है, सुख-सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, वह उतना ही निकम्मा और आलसी बनता जाता है और एक प्रमादपूर्ण जीवन संसार की सारी बुराइयों और व्यसनों का श्रमदान है। खाली और निठल्ला बैठा हुआ व्यक्ति सिवाय खुराफात करने के और क्या कर सकता है। यही कारण है कि उत्तराधिकार में सफलता पाए हुए व्यक्ति अधिकतर व्यसनी और विलासी हो जाते हैं।

किंतु जो कठिनाइयों से जूझ रहा है, परिस्थितियों से टक्कर ले रहा है, असुविधाओं को चुनौती दे रहा है उसे संसार की फिजूल बातों के लिए अवकाश कहाँ। उसके लिए एक-एक क्षण का मूल्य है, जीवन की एक-एक बूँद का महत्त्व है। जिस प्रकार मोर्चे पर डटे हुए सैनिकों की साहस और उत्साह की वृत्तियों के अतिरिक्त अन्य सारी वृत्तियाँ सो जाती हैं उसी प्रकार कठिनाइयों के मोर्चे पर अड़े हुए व्यक्ति की समस्त प्रभावपूर्ण वृत्तियाँ सो जाती हैं।

कष्ट और कठिनाइयों का अनुभव पाया हुआ व्यक्ति दूसरों के दुःख-दरद को ठीक-ठीक समझ लेता है और सामर्थ्य भर सहायता करने की कोशिश करता है। उसमें सहानुभूति, सौहार्द, सहयोग तथा संवेदना जैसे दैवी गुण आ जाते हैं। कष्ट पाया हुआ व्यक्ति दूसरे को

सताने और दुःख देने से डरता है। कष्ट और कठिनाइयाँ मनुष्य के अहंकार को नष्ट करके उसमें विनम्रता, श्रद्धा और भक्ति के भाव भर देती हैं। कठिनाइयों की कृपा से ऐसे अनेक गुण पाकर मनुष्य का चरित्र चमक उठता है और वह मनुष्यता से देवत्व की ओर बढ़ने लगता है।

कठिनाइयाँ मनुष्य को स्वस्थ और सुदृढ़ बनाती हैं। कठिनाइयों से निकलने के लिए मनुष्य को जो श्रम करना पड़ता है, वह स्वास्थ्य के लिए अनमोल रसायन सिद्ध होता है। जो परिश्रम करेगा वह स्वस्थ रहेगा ही, इस तथ्य में किसी भी तर्क-वितर्क की गुंजाइश नहीं है।

कठिनाई से उपार्जित सुख-साधनों में जितना संतोष होता है उतना सहज उपलब्ध साधनों से नहीं। परिश्रमपूर्ण कमाई से दो रुपए पाकर एक मजदूर जितना प्रसन्न और संतुष्ट होता है उतना ब्याज के दो हजार रुपए पाकर एक साहूकार नहीं।

कठिनाइयाँ मनुष्य जीवन के लिए वरदान रूप ही होती हैं। किंतु इन अमोघ वरदानों का लाभ वही उठा सकता है जो इनको सँभालने और वहन कर सकने की सामर्थ्य रखता है। अन्यथा वह बोझ बनकर मनुष्य को कुचल भी देती है। जो परिश्रमी है, पुरुषार्थी है, साहसी और उत्साही है, वह इनको फलीभूत करके संसार की अनेक विभूतियों को उपलब्ध कर लेता है। जो आलसी, प्रमादी, कायर और अकर्मण्य है वह इनकी चपेट में आकर जीवन की समस्त सुख-शांति से हाथ धो बैठता है। कठिनाइयों का मूल्य बहुत गहरा है। जो इन्हें विजय कर लेता है, वह बहुत कुछ पा लेता है और जो इनसे हार बैठता है उसे बहुत कुछ चुकाना पड़ता है।

कष्ट और कठिनाइयों को जो व्यक्ति विवेक और पुरुषार्थ की कसौटी समझकर परीक्षा देने में नहीं हिचकते, वे जीवन की वास्तविक

सुख-शांति को प्राप्त कर लेते हैं। किंतु जो कायर हैं, क्लीब हैं, आत्मबल से हीन हैं, वे इस परीक्षा-बिंदु को देख डर जाते हैं जिसके फलस्वरूप 'हाय-हाय' करते हुए जीवन के दिन पूरे करते हैं। न उन्हें कभी शांति मिलती है और न सुख। सुखों का वास्तविक सूर्य दुःखों के घने बादलों के पीछे ही रहता है। जो इन बादलों को पार कर सकता है वही उनके दर्शन पाता है और जो दुःखों के गंभीर बादलों की गड़गड़ाहट से भयभीत होकर दूर खड़ा रहता है, वह जीवन भर सुख-सूर्य के दर्शन नहीं कर सकता। वास्तविक सुख को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है संसार के दुःखों का झूठा परदाफाश किया जाए। शीतलता का सुख लेने के लिए गरमी को सहन करना ही होगा।

केवल मात्र सुख-सुविधाओं से भरा जीवन अधूरा है। जब तक मनुष्य दुःखों का अनुभव नहीं करता, कष्टों को नहीं सहता, वह अपूर्ण ही रहता है। मनुष्य की पूर्णता के लिए दुःख-तकलीफों का होना आवश्यक है। दुःखों की आग में तपे बिना मनुष्य के मानसिक मल दूर नहीं होते और जब तक मल दूर नहीं होते मनुष्य अपने वास्तविक रूप में नहीं आ पाता।

इसके अतिरिक्त कष्ट-क्लेशों का सबसे महत्वपूर्ण उपयोग यह है कि उनके आगमन पर गरीब को बड़ी तीव्रता से ईश्वर की याद आती है। दुःख की तीव्रता मनुष्य में ईश्वरीय अनुभूति उत्पन्न कर उसके समीप पहुँचा देती है। कष्ट और क्लेशों के रूप में मनुष्य अपने संचित कर्मफलों को भोगता हुआ शनैः-शनैः परलोक का पथ प्रशस्त किया करता है। जहाँ दुःख की अनुभूति नहीं, वहाँ ईश्वर की अनुभूति असंभव है। यही कारण है कि भक्तों ने ईश्वर के समीप रहने के साधन रूप दुःख को सहर्ष स्वीकार किया है।

कष्ट और कठिनाइयों को दुःखमूलक मानकर जो इनसे भागता है उसे यह दुःखरूप में ही लग जाती हैं और जो बुद्धिमान इन्हें सुखमूलक मानकर इनका स्वागत करता है उसे यह देवदूतों के समान वरदायिनी होती है।

कठिनाइयों का भी स्वागत करें

मानव-जीवन संघर्षपूर्ण है। जीवन में नित्य ही नए-नए उतार-चढ़ावों का सामना करना पड़ता है। सुख-दुःख, लाभ-हानि, प्रसन्नता-शोक, जन्म-मरण आदि द्वंद्व जीवन में आते जाते रहते हैं। लेकिन हम केवल सुख, प्रसन्नता, लाभ, सफलता की ही आकांक्षा रखते हैं। इसके विपरीत दुःख, कठिनाइयाँ, परेशानियाँ, समस्याओं से हम कतराते हैं। उनसे घबराकर उनकी कल्पना भी जीवन में नहीं करना चाहते, किंतु हममें से प्रत्येक को अपनी इच्छा के विरुद्ध भी जीवन में इनका सामना करना ही पड़ता है। उस स्थिति में हममें से बहुत से रोने लगते हैं। चिंता, शोक, क्लेश, अशांति में घुल-घुल कर असमय में ही जीवन नष्ट कर लेते हैं। दूसरे ऐसे भी लोग होते हैं जो इन कठिनाइयों को ही अपने विकास, उत्थान, महानता तथा प्रगति का साधन बना लेते हैं। महर्षि व्यास ने कहा है—“क्षुद्रमना लोग ही दुःख के वशीभूत होकर अपना तप-तेज, शक्ति को नष्ट कर लेते हैं। किंतु पुरुषार्थी, महामना लोग कष्टों को भी अपनी सफलता और विकास का आधार बना लेते हैं।”

रोना-धोना, शोक करना, चिंता-विषाद में खिन्न हो बैठना, हार मान लेना, कठिनाइयों, दुःखों का कोई समाधान नहीं है। ऐसी स्थिति में तो कठिनाइयाँ सुरसा की तरह जीवन को ही छिन्न-भिन्न कर देती हैं। यह भी निश्चित है कि जीवन के साथ दुःख और कठिनाइयाँ सदैव

रहे हैं और रहेंगे। इनसे कभी छुटकारा नहीं पाया जाता है। छांदोग्य उपनिषद्कार ने कहा है—“न हि वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपद्धतिरस्ति।” अर्थात् निश्चय ही जब तक यह शरीर बना हुआ है, तब तक सुख और दुःख निवारण नहीं हो सकते। कठिनाइयाँ जीवन का उसी तरह एक अनिवार्य अंग हैं जिस तरह रात्रि का होना, ऋतुओं का बदलते रहना।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि कठिनाइयों के रहते हुए भी आगे बढ़ा जाए। इन्हें जीवन को विकसित और महान बनाने का आधार क्यों न बना लिया जाए? हार मान बैठने पर तो ये हमें मटियामेट ही कर देंगी। दृढ़ साहस-निष्ठा से काम लेने पर, अविचल भाव से अपने पथ पर बढ़ते रहने से ये समस्याएँ ही मनुष्य की सहायक और सहयोगी बन जाती हैं। स्मरण रखिए, उन्नति एवं सफलता का मार्ग कष्ट एवं मुसीबतों के कंकड़-पत्थरों से ही बना है। प्रत्येक महान बनने वाले व्यक्ति को इसी मार्ग का अवलंबन लेना पड़ता है। जिस तरह विष को शुद्ध करके अमृत के गुण प्राप्त कर लिए जाते हैं उसी प्रकार कठिनाइयों का भी शोधन कर इन्हें आत्मोत्थान का आधार बनाया जा सकता है।

कठिनाइयाँ एक रूप में उस स्थिति का नाम है, जहाँ मनुष्य अपना पूरा-पूरा समाधान प्राप्त नहीं कर पाता। ‘क्या करूँ, क्या न करूँ’ का निर्णय नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति में एक रास्ता तो उन लोगों का है जो रो-रोकर, शोक करके, चिंता, विषाद में डूबकर अपना समय बिताते हैं। दूसरे प्रकार के व्यक्ति वे होते हैं जो समस्या के समाधान में अधिक मनोयोगपूर्वक विचारमग्न होते हैं। समाधान जल्दी ही मिले इसके लिए व्यस्त रहते हैं। यही मार्ग उत्तम है। कठिनाइयों में रोने के बजाय उनके समाधान का मार्ग ढूँढ़ना ही रोग

का सही इलाज है। रोगी को औषधि न देकर, उसके इलाज की व्यवस्था न करके रोग और रोगी के लिए रोते रहने से तो संकट बढ़ेगा ही। इसलिए कष्ट के समय अपने समस्त बुद्धि, विवेक और प्रयत्नों को इनके हल करने में लगा देना चाहिए। इससे तीन लाभ होंगे—(१) जब समस्त शक्तियाँ एकाग्र होकर किसी एक क्षेत्र में काम करेंगी तो संतोषजनक समाधान भी मिलेगा। (२) साथ ही शक्तियाँ अधिक सूक्ष्म और विकसित होंगी। (३) बुद्धि, विवेक, अनुभव बढ़ेंगे। मनुष्य के व्यस्त रहने से कठिनाइयों के प्रति शोक, चिंता एवं उद्विग्नता में डूबने के लिए कोई समय ही नहीं मिलेगा। स्वामी विवेकानंद ने लिखा है—“व्यस्त मनुष्य को आँसू बहाने के लिए कोई समय नहीं रहता।”

कठिनाइयाँ एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत व्यक्ति सुदृढ़, प्रबुद्ध एवं अनुभवी बनता है। प्रारंभिक कठिनाइयाँ मनुष्य को बहुत ही भयंकर जान पड़ती हैं। किंतु धीरे-धीरे वही व्यक्ति कठिनाइयों में पलते-पलते इतना दृढ़ और परिपक्व हो जाता है कि जिन स्थितियों में वह भयभीत रहा करता था, चिंता और विषाद में डूबा रहता था, उन्हीं स्थितियों में वह बेधड़क हो जीवन-पथ पर चलने लगता है।

आप कठिन परिस्थितियों से घबराएँ नहीं, न इनसे शोकातुर ही हों। ये तो आपके जीवन को विकसित और परिपुष्ट बनाने के लिए आती हैं। सोना तपकर ही निखरता है। इसी तरह मनुष्य का जीवन भी कठिनाइयों में पलकर ही खिलता है।

कठिनाइयाँ जीवन की कसौटी हैं, जिनमें हमारे आदर्श, नैतिकता एवं शक्तियों का मूल्यांकन होता है। दुःख और कठिनाइयाँ ही जीवन का एक ऐसा अवसर है जिसमें मनुष्य अपने आंतरिक जीवन की ओर

अभिमुख होता है। विपत्तियों में ही मनुष्य अपने जीवन, जगत, प्रकृति, आत्मा, परमात्मा के बारे में सोचने को बाध्य होता है। सुखद परिस्थितियों में और तो और मनुष्य अपना आपा भी भूल जाता है। सुख की मादक मस्ती में मनुष्य के बुद्धि, विवेक, विचारशीलता, नीति एवं सदाचार तिरोहित हो जाते हैं। इसीलिए महाभारत में वेदव्यास जी ने लिखा है—
 “दुःख में दुखियों के प्रति हमदरदी पैदा होती है और मनुष्य भगवान का चिंतन करता है। सुख में मनुष्य का हृदय संवेदना रहित कठोर बन जाता है और मनुष्य ईश्वर तक को भूल जाता है।” दुःखों में ही अपने भले-बुरे विचार कर सकने का विवेक पैदा होता है। रहीम जी ने कहा है—

रहिमन विपदाहू भली, जो थोड़े दिन होय।

हित अनहित या जगत में जान परत सब कोय ॥

जब मनुष्य सुख की नींद में सोया रहता है तो और तो और अपने जीवन के शाश्वत लाभ तथा संसार में अपने कर्तव्य को भूला रहता है। किंतु दुःख का झटका उसे इस नींद से जगाता है और मनुष्य को क्या करना है? वह किसलिए आया है? संसार में उसका क्या कर्तव्य धर्म है? इसका पाठ मजबूरन सिखाता है। दुःख के झकझोर डालने पर जब हम अपने ध्येय और कर्तव्य में एकाग्र होकर लग जाते हैं, जीवन को सक्रिय बना लेते हैं तो वही दुःख कालांतर में सुखद परिणाम लेकर आता है। आंतरिक-बाह्य जीवन में सुख का संचार होता है। दुःख, सुखों का संदेश लेकर आता है, यह कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

हम व्यर्थ ही दुःखों में रोते हैं। अपने भाग्य या ईश्वर को कोसते हैं। दुःख तो प्रकृति माता की वह प्रक्रिया है, ईश्वर का वह वरदान है, जिसमें हम सचेष्ट होते हैं, जीवन की शक्तियों को उपयोग में

लाते हैं और इससे हमारे सुखद और उज्ज्वल भविष्य का निर्माण होता है।

सुख को हम प्यार करते हैं, किंतु दुःख में रोते हैं, चिंता, शोक में डूब जाते हैं। यह हमारे एकांगी दृष्टिकोण और अज्ञान का परिणाम है। सुख की तरह दुःख भी जीवन का अभिन्न पहलू है। यदि दुःख न रहे तो सुख से हम ऊब जाएँगे। सुख के मादक नशे में एकदूसरे का नाश कर लेंगे। इतना ही नहीं, हम सुख का मूल्य ही नहीं समझ सकेंगे। रात्रि के अस्तित्व में ही दिन का जीवन है। रात्रि न हो तो दिन महत्त्वहीन हो जाएगा। जिस तरह रात और दिन एक ही काल के दो पहलू हैं। जिस तरह रात के बाद दिन और दिन के बाद रात आती है, उसी तरह दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख का क्रम चलता ही रहता है। आवश्यकता इस बात की है कि सुख की तरह ही हम दुःख का भी स्वागत कर, उसमें शांतमना, स्थिर, दृढ़ रहकर अपने कर्तव्य में लगे रहें।

स्मरण रखिए, जीवन के शाश्वत मूल्यों को समझ लेने पर, कर्तव्य में जुट जाने पर कठिनाई, दुःख नाम की कोई वस्तु शेष नहीं रहती। सदा से धरती पर दुःख, द्वंद्व, शोक हैं और आएँगे। इनका सर्वथा निवारण नहीं हो सकता। अतः इनमें रोने और शोक करने से, चिंता, विषाद में डूबने से तो जीवन को पूर्ण विराम ही लग जाएगा। अतः हमें इन्हीं में आगे बढ़ना होगा।

आपत्तियों से डरिए नहीं, लड़िए

परिवर्तन संसार का स्वाभाविक गुण है। यह एकरस कदापि नहीं रह सकता। ऋतुओं का परिवर्तन, रात-दिन, धूप-छाँह की अदल-बदल यही प्रकट करते हैं कि संसार की शोभा भी इसके परिवर्तनशील

होने में है। हर परिवर्तन एक नवीन जिंदगी लेकर आता है। जब संसार ग्रीष्म में तपकर व्याकुल हो उठता है, तब बरसात उसका ताप दूर करके एक नवजीवन 'नए सुख' का संचार करती है। बरसात से जब नदियाँ बढ़ जाती हैं, रास्ते बंद हो जाते हैं, पानी गँदला हो जाता है, कीड़े-मकोड़े बढ़ जाते हैं, तब इनका निवारण करने के लिए शरद ऋतु आती है और बरसात से ऊबा हुआ मनुष्य पुनः एक नवीन जीवन का अनुभव करता है। इसी प्रकार जब जाड़ा प्राणलेवा बन जाता है, तब पुनः शीतरहित ऋतु का आगमन होता है। आशय यह कि एक सी स्थिति में रहते संसार के प्राणी ऊबकर विरक्त न होने लगे, इसलिए परमात्मा ने संसार में परिवर्तन का एक अनिवार्य नियम बना दिया है।

संसार का एक अंग होने से मनुष्य का जीवन भी परिवर्तनशील है। बचपन, जवानी, बुढ़ापा आदि का परिवर्तन; तृषा, तृप्ति, काम, आराम, निद्रा, जागरण तथा जीवन-मरण के अनेक परिवर्तन मानव जीवन से जुड़े हुए हैं। इसी प्रकार सफलता-असफलता तथा सुख-दुःख भी इसी परिवर्तनशील मानव जीवन के अभिन्न अंग हैं।

परिवर्तन जीवन का चिह्न है। अपरिवर्तन जड़ता का लक्षण है। जो जीवित है, उसमें परिवर्तन आएगा ही। इस परिवर्तन में ही रुचि का भाव रहता है। एकरसता हर क्षेत्र में अरुचि उत्पन्न कर देती है।

कठिनाइयों का आगमन भी इसी परिवर्तनशीलता के ही अंतर्गत हुआ करता है। मानव जीवन संघर्षपूर्ण प्रक्रिया है। अधिकतर लोग संघर्ष को बुरा मानते हैं, उससे बचने का प्रयत्न करते हैं। किंतु यह संघर्ष ही मनुष्य जीवन के विकास एवं सफलता का कारण है। यदि

संघर्ष न हो तो कोई शक्तिशाली, विद्वान, पुरुषार्थी अथवा परिश्रमी बनने का प्रयत्न ही न करे। स्पर्द्धारूपी संघर्ष ही मनुष्य को एकदूसरे से ऊँचा कलाकार, कार्यकर्ता तथा शिल्पकार बनने की प्रेरणा देता है। यदि मनुष्य को बिना श्रम किए भोजन मिल जाया करे, प्रकृति की कठोरता से संघर्ष किए बिना उसकी आवश्यकताएँ पूरी हो जाया करतीं तो मनुष्य कितना काहिल और कितना निकम्मा होता, इसका अनुमान लगा सकना कठिन है।

प्राकृतिक कठोरताओं के संघर्ष से ही प्रेरित होकर मनुष्य ने जीवन में सुख-सुविधाओं के रूप में बड़ी-बड़ी सभ्यताओं एवं संस्कृतियों का निर्माण कर डाला है। प्रकृति से छिड़े हुए संघर्ष ने ही संसार में आश्चर्यचकित कर देने वाले शिल्पों को जन्म दिया है। संघर्ष संसार की न केवल स्वाभाविक प्रक्रिया है बल्कि परिवर्तन की तरह यह आवश्यक भी है। इसके बिना मनुष्य का विकास रुक जाता, भौचक्के कर देने वाले विज्ञान की भी प्रगति न होती।

किंतु कितना आश्चर्य है कि मानव-विकास की इस अनिवार्य आवश्यकता से न जाने मनुष्य क्यों डरता है? परिवर्तन से डरना और संघर्ष से कतराना मनुष्य की बहुत बड़ी कायरता है।

मनुष्य जब तक जीवित है, उसे परिवर्तनपूर्ण उतार-चढ़ाव और बनने-बिगड़ने वाली अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना ही होगा। दुःख-सुख, हानि-लाभ, सफलता-असफलता, सुविधा एवं कठिनाइयों के बीच से गुजरना ही होगा। लाख चाहने और प्रयत्न करने पर भी वह इनको आने से नहीं रोक सकता। यह आएँगी ही और मनुष्य को इनसे जूझना ही होगा।

यह बात दूसरी है कि कोई कायर इनकी मार खाकर रोता-चिल्लाता हुआ इनको पार करता है और कोई साहसी अपने आत्मबल

एवं पुरुषार्थ के संबल का सहारा लेकर या तो इनको अपने अनुकूल बना लेता है या इनका मुख मोड़ देता है।

रोना-धोना, शोक, चिंता और विषाद करने से कोई परिस्थिति नहीं बदलती, कोई कठिनाई दूर नहीं होती। बल्कि वे कमजोर मनोभूमि पाकर और भी विकराल रूप में अपना तांडव करती हुई कायर के भय से अपना मनोरंजन किया करती हैं। जहाँ उनके ठहरने का समय दिन दो दिन होता है, वहाँ वे महीनों-वर्षों के लिए अपना टिकाव लगा देती हैं। रोग-झींकना, भयभीत होना अथवा भागना एक प्रकार से कठिनाइयों एवं अपत्तियों के प्रति आत्मसमर्पण करना है और किसी शत्रु के सम्मुख आत्मसमर्पण करने का जो फल होता है, वही उसे भोगना पड़ता है। ऐसे दुर्बल व्यक्ति का आत्मसमर्पण पाकर आपत्तियाँ उसका सर्वस्व हरण कर लेती हैं। उसकी मानसिक शक्तियों, आत्मिक बल, प्रसन्नता, आशा, उल्लास आदिक संपत्तियों को हड़प कर नितांत दरिद्र बना देती हैं।

परिवर्तन के नियम और संघर्ष में प्रबलता के कारण जब जीवन में कठिनाइयों, परेशानियों और आपत्तियों का आना अनिवार्य ही है, तब रोने-धोने, भागने, भयभीत होने के स्थान पर उनसे लड़ना और टकराना ही उचित मालूम होता है।

बिना कठिनाइयों के मनुष्य का पुरुषार्थ नहीं खिलता, उसके आत्मबल का विकास नहीं होता, उसके साहस और परिश्रम के पंख नहीं लगते, उसकी कार्य-क्षमता का विकास नहीं होता। यदि कठिनाइयाँ न आएँ तो मनुष्य साधारण रूप से रेलगाड़ी के पहिये की तरह निरुत्साह के साथ दुलकता चला जाए। उसकी अलौकिक शक्तियों, उसकी दिव्य क्षमताओं, उसकी अद्भुत बुद्धि और शक्तिशाली विवेक के चमत्कारों को देखने का अवसर ही न मिले। उसकी सारी विलक्षणताएँ,

अद्भुत कलाएँ और विस्मयकारक योग्यताएँ धरती के गर्भ में पड़े रत्नों की तरह ही पड़ी-पड़ी निरूपयोगी हो जातीं।

निस्संदेह यह आपत्तियों तथा कठिनाइयों की कृपा है जो मनुष्य अपनी शक्तियों तथा अपने स्वरूप को पहचान सका है। कठिनाइयाँ ही मनुष्य के मस्तिष्क को जगाती, उसकी आत्मा को प्रबुद्ध करती और उसे विकास के पथ पर अग्रसर करती हैं। मनुष्य को आपत्तियों से घृणा नहीं बल्कि प्रेम करना चाहिए, उनका आभार मानना चाहिए, उन्हें धन्यवाद देना चाहिए।

मनुष्य के ज्ञानवर्द्धन में कठिनाइयों का बहुत हाथ है। आपत्ति के समय ही मनुष्य को ठोस अनुभव होते हैं। आपत्तिकाल में ही उसे अपने-परायों की, मनुष्यता एवं पशुता की परख होती है। कठिनाइयाँ तथा आपत्तियाँ ही संसार के वास्तविक रूप को उसके सामने प्रकट करती हैं। कठिनाइयाँ ही मनुष्य को अपने प्रति बहुत से भ्रमों को दूर कर देती हैं। आपत्ति के बीच अपनी दशा देखकर ही मनुष्य ठीक-ठीक समझ पाता है कि वह कितने पानी में है। बड़े-बड़े साहसी अपने को कायर और कमजोर समझने वाले देखते हैं कि उनमें तो काफी साहस है। इस प्रकार कठिनाइयाँ मनुष्य के लिए हर प्रकार से सहायक तथा उपयोगी ही होती हैं।

किंतु किसके लिए? क्या उसके लिए जो उनको देखते ही दुम दबाकर भागते या रोते-चिल्लाते हैं? क्या आपत्तियों में जिनकी बुद्धि विकल एवं भ्रष्ट हो जाती है, मन का सारा साहस कूँच कर जाता है? क्या उनके किए जो भीरु हैं, सुकुमार हैं, असहिष्णु अथवा सुखलिप्सु हैं? नहीं, कठिनाइयों का सहन कर सकना निर्बल हृदय व्यक्ति के वश की बात नहीं है और जो उनको सहन नहीं कर सकता, वह सिद्धि पाना तो दूर, उनसे लाभ उठाना तो क्या, उलटे उनमें जलकर

भस्म ही हो जाएगा। आपत्तियों का झंझावात जहाँ नरसिंहों को झकझोर उनका प्रमाद दूर करके पुरुषार्थ के लिए खड़ा कर देता है, वहाँ शृगाल-शशकों को भयभीत करके जीवन-रण में परास्त कर देता है।

आपत्तियाँ संसार का स्वाभाविक धर्म है। वे आती हैं और सदा आती रहेंगी। उनसे न तो भयभीत होइए और न भागने की कोशिश करिए, बल्कि अपने पूरे आत्मबल, साहस और शूरता से उनका सामना कीजिए, उन पर विजय प्राप्त कीजिए और जीवन में बड़े से बड़ा लाभ उठाइए।

दुःखों का सामना कीजिए

एक ओर मनुष्य ज्यों-ज्यों सभ्यता की ओर बढ़ता और सुख-सुविधा के साधन जुटाता गया, त्यों-त्यों उसमें कष्ट सहन करने की क्षमता कम और दुःख अनुभूत करने की दुर्बलता अधिक बढ़ती गई है। जहाँ दुःखानुभूति की वृद्धि हुई है, वहाँ इससे यह लाभ भी हुआ है कि मनुष्य-मस्तिष्क सुख की अधिकाधिक खोज करता हुआ परमानंद तक पहुँच गया है।

सामान्यतः जन-साधारण उस परमानंद तक नहीं पहुँच सकता, फिर भी दिन-प्रतिदिन सिर पर खड़े हुए दुःखों से बचाव करने का उपाय तो करता ही होगा। किसी बात का निराकरण करने के लिए उसके मूल को समझना होगा। जिस प्रकार किसी रोग के उपचार के लिए वैद्य को सबसे पहले रोग का निदान करके उसके उत्पन्न होने के कारण को खोजना और समझना पड़ता है, उसी प्रकार दुःख के निराकरण के लिए उसके स्वरूप और कारण को समझना होगा।

दुःख क्या है, उसकी उत्पत्ति कैसे होती है, उससे क्या अहित है और उसका निराकरण किस प्रकार हो सकता है, इन सब बातों पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है।

आकाश की भाँति दुःख भी कोई स्थूल वस्तु नहीं है, वह भी एक निराकार अनुभूति मात्र है। यह अनुभूति मात्र है। यह अनुभूति जितनी तीव्र होगी दुःख का अनुभव भी उतना ही प्रचंड होगा। दुःख यदि असुविधापूर्ण परिस्थिति विशेष पर निर्भर होता तो अधिक सुविधाएँ वाले हर व्यक्ति को सुखी होना चाहिए और असुविधापूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले को दुःख से दबकर मर जाना चाहिए। संसार में सुख-सुविधाओं के साधन उतने नहीं हैं जितनी कि जनसंख्या। इस अनुपात से तो यदि दुःख का कारण असुविधापूर्ण परिस्थितियाँ ही होतीं, तो संसार का दो तिहाई जन-समुदाय हर समय रोता-कलपता ही दृष्टिगोचर होता। किंतु होता ऐसा नहीं। जहाँ सुविधासंपन्न व्यक्ति प्रसन्न दीखते हैं वहाँ असुविधाग्रस्त व्यक्ति भी और जहाँ असुविधाग्रस्त लोग व्यग्र एवं विकल होते देखे जाते हैं, वहाँ सुविधासंपन्न व्यक्ति भी कम परेशान नहीं होते। इस न्याय से तो यही सिद्धांत निकलता है कि सुख-दुःख का अस्तित्व सुविधा-असुविधापूर्ण परिस्थितियों पर निर्भर नहीं है, बल्कि इनका कोई अन्य कारण है।

दुःख-सुख का मूल बाह्य परिस्थितियों में नहीं, मनुष्य की अपनी मनःस्थिति में है, उनकी न्यूनाधिकता का होना उसकी संवेदनशीलता की तीव्रता पर निर्भर करता है। हर समय देखा जा सकता है कि एक ही समान परिस्थिति में रहने वाले दो व्यक्तियों में से एक दुखी दीखता है और दूसरा प्रसन्न। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि किसी एक ही परिस्थिति में एक ही व्यक्ति कभी प्रसन्न और कभी खिन्न होने लगता है।

एक समय ऐसा भी था जब संसार में किसी प्रकार की सुविधा का कोई छोटा-मोटा साधन भी नहीं था। मनुष्य प्राकृतिक साधनों पर निर्भर रहकर भी प्रसन्न रहा करता था। यदि असुविधाएँ ही दुःख का कारण होतीं तो उस समय से अब तक मनुष्य को जीवित न रहना चाहिए था। आज भी देखा जा सकता है कि मनुष्य की अपेक्षा पशु-पक्षियों के पास साधनों की कमी ही नहीं पूर्णरूपेण अभाव है, तब भी वे मनुष्यों से अधिक प्रसन्न दीखते हैं। मनुष्य की भाँति कोई भी पशु-पक्षी रोते-कलपते नजर नहीं आते। वे एक नैसर्गिक जीवन यापन करते हुए भी प्रमुदित एवं प्रसन्न रहते हैं।

पशु-पक्षी ही क्यों सभ्य मानव संसार को ही ले लिया जाए। आज भी ऐसे देश, द्वीप और भूमंडल हैं जिनके निवासियों को सुख-सुविधाओं के साधन नहीं के बराबर ही उपलब्ध हैं। कोई जातियाँ रेगिस्तान के बीच रहती हैं, कोई पानी के नीचे तो कोई बरफ से घिरी हुई रहती हैं, किंतु वे भी हँसती, खेलती और प्रसन्न होती हैं। एक किसान और साहूकार की ही तुलना कर ली जाए कि जिस कड़ाके की सरदी में किसान अपने खेत में गाता हुआ हल जोतता है, उसी सरदी में कोई अमीर आदमी लिहाफ में लिपटा हुआ अँगोठियों के बीच भी कष्ट अनुभव करता है। किसी एक ही व्यक्ति को ले लीजिए कि जाड़ों में जो प्रातः काल लिहाफ से मुँह नहीं निकालता, वहीं अपने किसी प्रियजन को लेने के लिए प्रसन्नतापूर्वक दौड़ा-दौड़ा स्टेशन जाता है।

इनके अतिरिक्त ऐसे भी व्यक्ति पाए जाते हैं जो सुख-सुविधाओं को त्यागकर असुविधापूर्ण जीवन अपना कर प्रसन्न रहते हैं। साधक तथा तपस्वी इसी श्रेणी के व्यक्ति हैं। यदि साग्रह अपनाया हुआ उनका असुविधापूर्ण जीवन दुःख का कारण होता तो प्रथम तो वे उसे अपनाने

की गलती ही नहीं करते अन्यथा पहले से अधिक प्रसन्न, स्वस्थ और तेजवान दीखने के स्थान पर दुर्बल, असंतुष्ट, खिन्न एवं दीन-हीन दीखते।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि दुःख-सुख का कारण बाह्य परिस्थितियाँ नहीं बल्कि मनुष्य की मनःस्थिति ही है।

जिसका मन बलवान है, जिसकी बुद्धि ठीक-ठीक क्रियाशील है और जिसकी संवेदनशीलता छुई-मुई की तरह सुकुमार नहीं है, वह मनुष्य अपेक्षाकृत दुःख का अनुभव कम ही करेगा। जिस विवेकशील ने दुःख के अस्तित्व में विश्वास नहीं किया हुआ है, जो कष्टों और आपत्तियों को उद्बोधन, सतर्कता, सावधानी और कर्मठता का हेतु मानता है, वह सुखों से अधिक दुःखों से लाभ उठाता है।

सुख-सुविधापूर्ण परिस्थितियों में मनुष्य प्रायः निकम्मा, आलसी और सुकुमार हो जाता है, जिससे मन-बुद्धि के साथ उसकी सारी इंद्रियाँ निस्तेज तथा निर्जीव हो जाती हैं। उन पर उसी प्रकार विकारों का मोरचा लग जाता है जिस प्रकार बेकार पड़ी हुई मशीन पर। चलती हुई मशीन के सारे पुरजे जिस प्रकार चमकदार और चिकने बने रहते हैं, ठीक उसी प्रकार संघर्षरत मनुष्यों की सारी क्षमताएँ एवं अवयव तेजस्वी बने रहते हैं।

आपत्तिकाल में जो मनुष्य दुःख से दबकर निश्चेष्ट हो जाता है, उसके संपूर्ण जीवन को एक छोटी सी विपत्ति भी अमरबेलि की तरह घेरकर सुखा देती है और जो दुःख को एक चुनौती की तरह स्वीकार करता है, एक बीज की तरह धरती का पर्त चीरकर पल्लवित हो उठता है।

“संसार दुःखों का सागर है”—यह उक्ति केवल उन्हीं पर चरितार्थ होती है जो दुःखों से भयभीत और प्रत्येक क्षण सुख के लिए

लालायित रहते हैं। सुख-सुविधा की अतिशय चाह भी दुःख का एक विशेष कारण है। इस निरंतर परिवर्तनशील और कष्ट प्रधान जगत में जो सदा अपने मनोनुकूल परिस्थितियों की अपेक्षा करता है, उसके लिए संसार की लघु से लघु प्रतिकूलता भी एक बड़ा दुःख बन जाती है। हम क्यों चाहते हैं कि हमें केवल शीतल मंद सुगंध समीर ही प्राप्त होती रहे, गरम वायु का कोई झोंका हमारे पास होकर न निकले। ऐसा किस प्रकार संभव हो सकता है? जब संसार में दोनों प्रकार की वायु चलती हैं तो क्रम से वे हमारे पास आएँगी ही। यदि हम छाँह की कामना करते हैं तो धूप सहन ही करनी होगी।

इसके अतिरिक्त यदि यह संभाव्य भी मान लिया जाए कि मनुष्य के मनोनुकूल परिस्थितियाँ संचित की जा सकती हैं और किसी प्रकार दुःख को पास नहीं भी आने दिया जा सकता है तब भी कुछ ही समय में एकरसता के कारण सुख-सुविधा की व्यवस्था भी दुःखदायी बन जाएगी। एक जैसी स्थिति में रहते-रहते मनुष्य का मन ऊब उठता है और तब वह प्रिय वातावरण में भी नीरसता का अनुभव करने लगता है। जिस प्रकार वियोग-संयोग सुख का उद्दीपक है उसी प्रकार सुखानुभूति को पुलकपूर्ण बनाए रहने के लिए दुःख का पुट भी आवश्यक है। कोई वस्तु किसी को कितनी ही प्रिय क्यों न हो, यदि वह उसे निरंतर ही खाने-पीने को दी जाती रहे तो शीघ्र ही उस व्यक्ति को अपनी वह प्रिय वस्तु भी अरुचिकर लगने लगेगी।

विश्वास रखिए कि दुःख का कोई अपना अस्तित्व नहीं है, यह आपकी अपनी मनोदशा का विकृत स्वरूप है। दुःख की दवा रोना नहीं मुस्कराना ही है। दुःख को देखकर मुस्कराइए, इसे स्थिति का छल समझकर हँसिए।

यदि आप दुःख की दशा में हाथ-पैर छोड़कर बैठ जाएँगे, उसके प्रति आत्मसमर्पण कर देंगे तो यह काल्पनिक प्रेत आपको विनष्ट कर देगा। दुखी होने वाला व्यक्ति न कभी स्वस्थ रह सकता है और न वह कोई उन्नति कर सकता है और न विकास। दुःखशील प्रवृत्ति के व्यक्ति के मन-मस्तिष्क निष्क्रिय और आत्मा निस्तेज होकर पतित हो जाती है।

हमें तू दुःख दे दयानिधान

शरीर में विजातीय द्रव्य जमा हो जाता है तो उसकी विकृति बीमारी के रूप में फूट पड़ती है। रोग शरीर की एक आवश्यकता है, जिससे अपनी जीवनी शक्ति का आभास होता है। यह ज्ञान मनुष्य को न मिले और विजातीय तत्त्व भीतर ही बढ़ते रहें तो अकाल मृत्यु सुनिश्चित हो जाती है। मनुष्य जीवन का ऐसा ही संकेत है, जो मनुष्य को इस बात के लिए सचेत करता रहता है कि उसका लक्ष्य कुछ और है। मनुष्य शरीर रूप में एक आत्मा है, इस आत्मतत्त्व की ओर संकेत का भाव मात्र है। वह दुःख इसलिए ग्रहणीय है। दुःख के बिना इस जीवन का महत्त्व भी कुछ नहीं रह जाता है।

महाभारत में कहा है—

विपदः सन्तु नः शाश्वत तत्र तत्र जगद्गुरो।

भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भव दर्शनम्॥

हे जगद्गुरो ! विपत्तियाँ हमारे जीवन में पग-पग पर आती रहें क्योंकि आपके दर्शन विपदाओं में ही होते हैं। आपके दर्शन मिल जाते हैं तो मनुष्य जन्म-मरण के बंधनों से विमुक्त हो जाता है।

आइए, इस दृष्टिकोण को समझने के लिए दुःख और उसके प्रभाव पर विचार करें। कामनाओं की पूर्ति न होना दुःख का कारण है

और इससे विकल होना ही दुःख का प्रभाव है। दीन-हीन की तरह दुःख को केवल भोगते रहना यह अभिशाप है, किंतु उसके प्रभाव से प्रभावित होकर सचेत होना निश्चय ही जीवन का वरदान है। सच मानिए, यदि विपदाएँ मनुष्य के जीवन में न आएँ तो उसकी अंतर्मुखी चेष्टाएँ कभी भी जाग्रत न हों और जिस लक्ष्य को लेकर उसे यह मानव देह मिलती है, वह साध्य सदैव अधूरा ही बना रहे। धन पाकर उसका उपयोग न करें तो उस धन और मिट्टी के ठीकरे में कोई अंतर नहीं होना चाहिए। मनुष्य का जीवन पाकर भी आत्म-ज्ञान से विमुख होना मनुष्य का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। दुःख जीवन-निर्माण का संदेशवाहक है, उसका सत्कार होना ही चाहिए। सुख और दुःख दोनों समान रूप से इसीलिए परमात्मा की ओर से मिले हैं कि इससे मनुष्य का जीवन एकांगी न हो।

प्राकृतिक नियमानुसार आंशिक सुख और दुःख सबके जीवन में हैं। पर जो मनुष्य कामनाओं की पूर्ति से आसक्त अर्थात् सुख को ही साध्य मान लेते हैं, उनके लिए सुख ही दुःखस्वरूप हो जाता है क्योंकि परिस्थितियों की विपरीतता के कारण सदैव कामनाओं की पूर्ति होते रहना निश्चित नहीं है। सभी कामनाएँ पूरी नहीं होतीं, इसलिए दुःख पैदा होना स्वाभाविक है। एक बात यह भी है कि प्रत्येक कामना की पूर्ति एक नई कामना पैदा कर जाती है, इससे सारी चेष्टाएँ सांसारिक गोरखधंधों में ही लगी रह जाती हैं और जीवन-ध्येय की ओर मनुष्य का बिलकुल भी ध्यान आकृष्ट नहीं हो पाता।

दुःखों से भी केवल प्रभावित होते रहना—इससे भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, जब तक उसके मूल कारण पर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार नहीं करते। धन के अभाव में कितने ही व्यक्ति इतने विकल रहते हैं कि सिवाय धन के और कुछ भी आँखों के आगे दिखाई नहीं

देता। एक दृष्टिकोण यह भी है कि हमसे अधिक दयनीय स्थिति के दूसरे व्यक्ति हैं। हम रूखी ही सही, दो वक्त खाते तो भी हैं, किंतु कितने लोग ऐसे हैं जो एक समय आधा पेट भोजन और वह भी मुश्किल से प्राप्त करते हैं। यह चिंतन अपने आत्म-विकास का साधन है। इससे संसार और उसकी परिस्थितियों पर विचार करने की शक्ति आती है। भौतिकता से हटकर संसार की सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं की ओर ध्यान जाता है। विचार करते-करते मनुष्य निजत्व पर आ जाता है। एक बार जैसे ही आत्मज्ञान के लिए असंतोष पैदा हुआ कि यों समझिए आपके आध्यात्मिक जीवन का सूत्रपात हुआ। यह परिस्थिति बन जाए तो जीवन लक्ष्य की ओर उन्मुख होना निश्चय ही समझिए।

दुःख के समय सुख की भावी संभावना मात्र से दुःख सहते रहते हैं। सुख के समय भी ऐसी ही चेतना जाग्रत हो कि सुख और दुःख दोनों धूप-छाँह की तरह आने-जाने वाले हैं, ऐसी जाग्रति आने पर आपका जीवन सुख और दुःख दोनों से अतीत हो जाएगा और आत्म-ज्ञान प्राप्त करने की निर्द्वंद्वता आ जाएगी।

विपत्ति मनुष्य को शिक्षा देने आती है। इससे हृदय में जो पीड़ा, आकुलता और छटपटाहट उत्पन्न होती है उससे चाहें तो अपना सदज्ञान जाग्रत कर सकते हैं। भगवान को प्राप्त करने के लिए जिस साहस और सहनशीलता की आवश्यकता होती है, दुःख उसकी कसौटी मात्र है। विपत्तियों की तुला पर जो अपनी सहनशक्तियों को तौलते रहते हैं, वही अंत में विजयी होते हैं, उन्हीं को इस संसार में कोई सफलता प्राप्त होती है।

दुःख का प्रभाव सच्चे सुख की अनुभूति कराता है। एक बार जब सुख के सही स्वरूप का बोध हो जाता है तो सुख-लोलुपता मिट

जाती है। दुःख को अनिवार्य और आवश्यक बताने का यह अर्थ नहीं कि सुख-प्राप्ति के उपाय त्याग दें। जीवन को ऊँचा उठाने का प्रयत्न तो हो ही, किंतु निष्काम कर्म से गिरा देने वाली जो सुख की तृष्णा होती है उससे बचना मानव जीवन की शुद्धता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। इसका आभास दुःख के क्षणों में सरलता से प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए दुःख सापेक्ष है किंतु सुख उचित होते हुए भी साध्य नहीं है।

पर वर्तमान समय में हम अधिकांश लोगों की मति इसके विपरीत ही देख रहे हैं। वे केवल सुख के इच्छुक हैं और दुःख को स्वप्न में भी नहीं चाहते। विशेषतः भौतिकवादी दृष्टिकोण के व्यक्ति दुःखों से बहुत नाराज होते हैं, यहाँ तक कि उनमें से अनेक सामान्य दुःखों के कारण आत्महत्या तक कर बैठते हैं। यह स्थिति बहुत ही लज्जाजनक है। मनुष्यों का सच्चा मनुष्यत्व दुःख-सुख दोनों ही अवस्थाओं में मानसिक संतुलन बनाए रखने में है। खासकर जो व्यक्ति अध्यात्म प्रधान भारतीय धर्म के अनुयायी कहलाते हैं उनके लिए इस प्रकार की मनोवृत्ति रखना अत्यंत खेद का विषय है। अध्यात्मवादी के लिए दुःख-सुख मानव-जीवन के दो स्वाभाविक पहलू हैं। जिनमें सम भावना रखना ही विवेकशील प्राणी का लक्षण है। इससे विपरीत आचरण अध्यात्म का उपहास करने के समान है।

मनुष्य की वास्तविक आवश्यकता कामनाओं की पूर्ति का सुख नहीं है, क्योंकि सुखी अवस्था में भी भय का अंत नहीं होता और न ही मृत्यु के भय से तो कोई बच भी नहीं सकता। इससे यह प्रतीत होता है कि निर्भयता सुख प्राप्ति से बढ़कर है। दुःख निवृत्ति, चिर विश्राम, पूर्ण स्वाधीनता और प्रेम स्वरूप की प्राप्ति—ये चार वस्तुएँ जीवन की चतुर्मुखी आवश्यकताएँ हैं। इन चारों की उपलब्धि उसे

होती है जो परमात्मा की प्राप्ति के लिए उसके आदेशों का पालन करने के लिए स्वेच्छापूर्वक, प्रसन्नतापूर्वक तत्पर होते हैं। तपश्चर्या इसी स्थिति का नाम है। परमपिता को हमारी किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं है। वे हमसे प्यार चाहते हैं, हमारी आकुल प्रार्थना पर ही वे रीझते हैं। विषयों में आसक्त जीवात्मा से वैसी प्रार्थना के उद्गार बन नहीं पाते, इसलिए तप का महत्त्व है। तप का एक ही अर्थ दुःख पैदा करना है। दुःख इसलिए अभीष्ट है कि इससे अंतःकरण का सत्य प्रतिभासित होता है। मनुष्य जीवन का विराम इसी सत्य को पाता है। अपने आंतरिक उद्गारों को सतत प्रार्थनाशील रखने के लिए दुःख चाहिए, कष्ट चाहिए। निरंतर हृदय में उमड़ने वाली वेदना चाहिए। यह दुःख जिसे मिले, यही समझना चाहिए कि उस पर परमात्मा का असीम अनुग्रह है। जिससे वे मिलना चाहते हैं उसे पहले दुःख का दूत भेजकर मिलने की स्वीकृति माँगते हैं। धन्य हैं वे लोग जो दुःख को परमात्मा का प्रसाद समझकर उसे अपने शीश पर धारण कर लेते हैं।

दुःख हमारे पुरुषार्थ को जगाने आता है। सुखी मनुष्य विलासी और व्यसनी, आलसी और प्रमादी बन जाता है। अहंकार उसे घेर लेता है और तृष्णाओं के पर्वत सामने आकर खड़े हो जाते हैं, किंतु जब दुःख सामने आते हैं तो मनुष्य को उनका प्रतिरोध करने के लिए अपनी प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत करना पड़ता है। पौरुष का निखार इन्हीं परिस्थितियों में होता है। सोने को अग्नि में तपाकर उसके मल विकार जलाए जाते हैं। इसी प्रकार दुःखों की अग्नि में तपा हुआ मनुष्य अपने अनेक दोष-दुर्गुणों से सहज ही छुटकारा पा जाता है।

सुखों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहना मनुष्य का स्वभाव है। वह अंतःप्रकृति की प्रेरणा से हर एक को करना ही होता है और

करना भी चाहिए। पर जब दुःख के अवसर आएँ तब घबराना तनिक भी नहीं चाहिए वरन अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का एक सुअवसर आया जानकर उसे भी शिरोधार्य करना चाहिए। दुःखों की हानि तभी है, जब मनुष्य उनका अभ्यस्त बनकर दीन-हीन बन जाए और अकर्मण्य बन उनसे छुटकारा पाने का प्रयास ही छोड़ बैठे। यह स्थिति न आने पाए तो दुःखों से परिस्थितियाँ मनुष्य को अधिक सुदृढ़, अधिक पुरुषार्थी, अधिक सहिष्णु एवं अधिक पवित्र बनाने में बड़ी उपयोगी एवं आवश्यक सिद्ध होती हैं। परमार्थ के लिए किए गए तप, त्याग में जो दुःख स्वेच्छा से वरण किया जाता है, वह तो आत्मा के लिए अमृत की तरह मंगलमय सिद्ध होता है। ऐसे दुःख की याचना यदि परमात्मा से की जाए तो इसमें जीव का कल्याण ही है।



हमारा सत्संकल्प

- ✧ हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।
- ✧ शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।
- ✧ मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।
- ✧ इंद्रियसंयम, अर्थसंयम, समयसंयम और विचारसंयम का सतत अभ्यास करेंगे।
- ✧ अपने आप को समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।
- ✧ मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।
- ✧ समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।
- ✧ चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।
- ✧ अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।
- ✧ मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्बिचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।
- ✧ दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं।
- ✧ नर-नारी के प्रति परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।
- ✧ संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।
- ✧ परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।
- ✧ सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।
- ✧ राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, संप्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।
- ✧ मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है—इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनाएँगे, तो युग अवश्य बदलेगा।
- ✧ 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा', 'हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा' इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।



मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)